

## १.२.२ वाचिक अभिनय

नाट्य में वाणी की सहायता से सम्पन्न क्रिया-कलाप वाचिक अभिनय कहलाता है। वाणी-व्यापार न केवल नाट्य का प्रत्युत लोक-व्यवहार का आधार है। समस्त संसार यात्रा वाणी के माध्यम से सुकर हो जाती है। यदि शब्द नामक प्रकाश-ज्योति न होती तो यह संसार अन्धकारमय ही रहता। भरत के अनुसार वाचिक अभिनय नाट्य का शरीर है, इसलिये इस सम्बन्ध में विशेष यत्न करना चाहिये।

वाचि यत्नस्तु कर्तव्यः नाट्यस्येयं तनुः स्मृता।

अंगनेपथ्यसत्त्वानि वाक्यार्थं व्यञ्जयन्ति हि।।

ना.शा., १४/२

प्रयोगों का आधार होने, गीत-वाद्य का अनुग्राहक होने और स्वयं अभिनयात्मक होने से वाणी को नाट्य का शरीर कहना संगत लगता है। यद्यपि पात्र के मनोभाव सात्त्विकादि अभिनयों से अभिव्यक्ति पाते हैं तथापि अभिव्यक्ति में रह गई कमी वाचिक अभिनय से पूर्णता प्राप्त करती है। वाचिक अभिनय में न्यूनमात्र भी शिथिलता आंगिक, सात्त्विक और आहार्य से प्राप्त भावाभिव्यक्ति को प्रभावहीन बना देती है। इसके लिये अभिनेता को अभिनय में और कवि को पटकथा निर्माण में विशेष प्रयत्न करना चाहिये।।

वाचिक अभिनय में अभिनेता प्रयोज्यपात्र के भाव के अनुसार वाणी और बोलने की शैली का भावपूर्ण अनुकरण करता है। किसी व्यक्ति के कहे गये वचनों का दूसरे व्यक्ति के द्वारा तदनुरूप कथन अनुवाद मात्र होता है। वाचिक अभिनय में अनुवाद से भिन्न यथाभावमनुक्रिया होती है। अर्थात् क्रोध, शोक, रति आदि भावों को कम्प, स्तम्भ, विवर्णता आदि सत्त्व के अनुरूप वचनभंगिमा से उपस्थापित किया जाता है। अभिनय के अन्य रूप आंगिक, आहार्य और सात्त्विक उसी के अर्थ को अभिव्यक्त करते हैं। वाचिक अभिनय के माध्यम से कथा और चरित्र का विकास किया जाता है। नाटककार के कथानकीय निबन्धन को अभिनेता मुख्यतः वाचिक योजना से दर्शकों तक पहुँचता है।

आंगिक, सात्त्विक और आहार्य अभिनयों का सम्बन्ध मुख्यतः सूत्रधार और अभिनेताओं से है किन्तु वाचिक कथोपकथन और सम्भाषण के योग्य वाक्य-रचना कविकौशल का परिणाम है। कवि की वाचिक संवाद योजना शिथिल होने पर अभिनेता का वाचिक अभिनय शिथिल हो जाता है। परिणामतः अन्य अभिनय के प्रयोग भी निष्फल हो जाते हैं। वाचिक अभिनय के नियम अभिनेता और पटकथा-लेखक दोनों पर ही समान रूप से लागू हैं। लेखक के द्वारा पटकथा निर्माण में संवाद लेखन की और नट के द्वारा अभिनय की दृष्टि से शब्दों की संरचना और उनके उच्चारण पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये। नाट्य में व्यवहृत वार्तालाप दो व्यक्तियों के द्वारा प्रयुक्त शब्दों और वाक्यों का समूह मात्र नहीं है अपितु भावात्मक और संवेगात्मक सन्दर्भ में व्यवहृत है। रचनाकार संवादों और कथोपकथनों की योजना करते समय स्वयं अनुभवकर्ता बनकर पात्रों के संवेग, भाव और संवेदना को अनभव करके वाचिक-पाठ्य की रचना करता है। भरतने वाचिक अभिनय के अन्तर्गत भाषा के समस्त अंगों- शब्द, छन्द, लक्षण, गुण-दोष, अलंकार, पाठ्यशैली आदि का तात्त्विक विश्लेषण किया है।

## शब्दविधान-

वाचिक अभिनय भाषा पर अवलम्बित है। अतः वाचिक अभिनय का विवेचन करते समय भरत ने भाषा के नियम, काव्य की भाषा का स्वरूप, उसके गुण, दोष, अलंकार, छन्द आदि का विस्तृत वर्णन किया है। भाषा का मूल वाक्य संरचना है। वाक्यरचना शब्दबन्ध पर आधारित होती है। एक वाक्य में नाम (संज्ञा) आख्यात (क्रिया) निपात, उपसर्ग, तद्धित समास, सन्धि, तथा विभक्ति आदि घटकों से किसी वाक्य का निर्माण किया जाता है। भरत ने शब्द-विधान की शास्त्रीय चर्चा के अन्तर्गत अकार आदि चौदह स्वर, ककार से लेकर हकार पर्यन्त व्यंजनवर्ण, उच्चारण स्थान, प्रयत्न, नाम आख्यात, उपसर्ग-प्रत्यय तथा सन्धि-समास आदि शब्दशास्त्र से सम्बद्ध तत्त्वों का विशद विवेचन किया है।<sup>2</sup>

## पदबन्ध-

शब्द विधान के अनुकूल पद रचना होने पर पदबन्ध होता है। सुबन्तों और तिङन्तों को पद कहते हैं। पदबन्ध में नाट्य की प्रतिष्ठा मानी गई है, क्योंकि नाट्य में गद्य एवं पद्य दोनों ही रूपों का प्रचुर प्रयोग होता है। प्राचीन भारतीय काव्य या नाट्य में पदबन्ध की दो शैलियाँ प्रयुक्त हुई हैं। चूर्ण (गद्य) और निबद्ध बन्ध (पद्य)

चूर्ण (गद्य)- इसमें अर्थ की अपेक्षा से सीमित अथवा असीमित पदों की योजना होती है। छन्दोविधान के अनुसार नियत अक्षरों से रहित रस-भाव आदि के व्यञ्जक अर्थापक्षी अक्षरों से अनुस्यूत पद चूर्णबन्ध कहे गये हैं।

निबद्ध (पद्य)- बन्ध में गुरु- लघु अक्षरों और मात्राओं की नियत संख्या होती। इसे ही छन्द भी कहते हैं। चारों पादों में लय की स्थिति के कारण इसे पद्य भी मात्राओं के प्रयोग पर भी विचार किया है।

## भाषा और सम्बोधन प्रयोग-

वाचिक अभिनय में भरत ने पात्रों द्वारा प्रयोज्य भाषा और परस्पर सम्बोधन के नियम भी बताये हैं। उदाहरण के लिये- भरत ने नाट्य में प्रयोज्य भाषा के चार प्रकार माने हैं।- अतिभाषा, आर्यभाषा, जातिभाषा, योग्यन्तरी भाषा।

अतिभाषा- देवगणों के संवाद अतिभाषा में निबद्ध किये जाते हैं।

आर्यभाषा- राजाओं के संवाद आर्यभाषा में लिखे जाते हैं। यह संस्कारसम्पन्न पाठ्य से युक्त होती है।

जातिभाषा- लोक में व्यवहृत भाषा जातिभाषा है। इसके सामान्यतः दो प्रकार प्रचलित हैं- संस्कृत और प्राकृत। संस्कारसम्पन्न व्याकरण सम्मत भाषा संस्कृत है किन्तु कहीं कहीं व्याकरण के संस्कार से हीन जनभाषा प्राकृत है।

योग्यन्तरी- यह ग्राम्य और अरण्यवासियों की भाषा है। पशुओं के अनुकरण की बोली भी इसी के अन्तर्गत समाहित है।)। सामान्यतः रूपकों में जिस भाषा का प्रयोग होता है वह जातिभाषा है। इसका

पाठ दो रूपों में होता है- संस्कृत और प्राकृत। संस्कृत भाषा संस्कारसम्मत, व्याकरण सम्मत भाषा है। स्थान (प्रान्त) भेद के अनुसार प्राकृत के सात उपभेद हैं- मागधी, आवन्तिका, प्राच्या, शौरसेनी, अर्धमागधी, बाह्लीकी और दाक्षिणात्या। इनके अतिरिक्त कतिपय विभाषायें भी प्राकृत वर्ग में सम्मिलित हैं। वे हैं- शकारी, चाण्डाली, आभीरी, द्राविडी। ये विभाषायें निम्नवर्ग के शकार, चाण्डाल, कोल, किरात तथा वनवासी पात्रों की भाषा के रूप में मान्य हैं।<sup>3</sup>

भरत ने स्पष्ट निर्देश दिया है कि कौन सा पात्र किस भाषा में सम्भाषण करे। उदाहरण के लिये धीर, उदात्त, ललित और प्रशान्त वर्ग के नायक और समाज के शिष्ट व्यक्तियों का वाग्व्यवहार संस्कृत में किया जाता है। परिव्राजक, संन्यासी, मुनि, शाक्ययति, वेदपाठी, श्रोत्रिय आदि को संस्कृत में वार्तालाप करना चाहिये। प्रसंग और अवसर के अनुरूप कभी-कभी इनसे प्राकृत में भी वार्तालाप कराया जाता है। जैसे मत्त व्यक्ति (धन या सुरा आदि से मत्त) संस्कृत का प्रयोग नहीं करता। विशेष परिस्थिति में अप्सराओं, रानी, वेश्या, संन्यासिनी स्त्री-पात्रों के द्वारा संस्कृत में वाग्व्यवहार कराया जाता है।

प्राकृत- दारिद्र्य, ऐश्वर्य से उन्मत्त, अध्ययन का अभाव और स्वेच्छाचारिता की स्थिति में उत्तम पात्रों के द्वारा भी संस्कृत भाषा का व्यवहार नहीं कराना चाहिये। प्रच्छन्न, श्रमण, साधु, जादूगर भी प्राकृत भाषा का प्रयोग करते हैं। स्त्री पात्रों की भाषा भी प्राकृत होती है। प्राकृत निम्न श्रेणी के पात्रों की भी भाषा है।<sup>4</sup>

सामान्यतः अन्तःपुर में रहने वाले सेवक मागधी में और चेट, राजकुमार और श्रेष्ठीजन अर्धमागधी में वाग्व्यवहार करते हैं। विदूषक प्राच्या में, धूर्त अवन्तिजा में, नायिका और उसकी सखियाँ शौरसेनी में सम्भाषण करती हैं। निष्कर्षतः नाट्य में लोकौचित्य को ध्यान में रखकर आवश्यकतानुसार देशज भाषाओं का प्रयोग करना चाहिये।

अभिज्ञानशाकुन्तल में शौरसेनी और मागधी का बाहुल्य है। शकुन्तला और प्रियंवदा शौरसेनी में सम्भाषण करती हैं। गौतमी की

भाषा मागधी है।

सम्बोधनप्रयोग- वाचिक अभिनय में पात्रों द्वारा परस्पर सम्बोधन के नियम भी बताये गये हैं। कतिपय प्रयोग द्रष्टव्य हैं- देवता, संन्यासी तथा शास्त्रज्ञ विद्वान् को 'भगवन्' सम्बोधन दिया जाना चाहिये। इनकी पत्नियाँ 'भगवति' सम्बोधन से वाच्य होती हैं। ब्राह्मण को 'आर्य', राजा को 'महाराज', उपाध्याय को 'आचार्य' और वृद्ध को 'तात' कहकर सम्बोधित किया जाना चाहिये। ब्राह्मण राजा को नाम लेकर या 'राजन्' कहकर और मन्त्री को 'अमात्य' या 'सचिव' शब्दों के प्रयोग से सम्बोधित करता है। समवयस्क पात्र नाम लेकर या 'वयस्य, सखे, मित्र' आदि पदों से परस्पर सम्बोधित किये जायें। समवयस्क स्त्री पात्र भी नामतः अथवाहला, सखि वयस्ये पदों का प्रयोग करती हुई एक दूसरे को सम्बोधन देती हैं। केहीनपात्र सपरिवार उत्तम पुरुष को अपना नाम लेकर सम्बोधित करते हैं। शिल्पी तथा उनकी स्त्रियाँ उनके कार्यों के अनुसार सम्बोधित किये जाने चाहिये। अधम पुरुष या सेवक वर्ग 'हहो', 'हण्डे' पदों से सम्बोधित किये जाते हैं। परिजन राजा को 'भट्ट' और रानी को 'भट्टिनी' कहते हैं। सूत रथी को 'आयुष्मान्' कहकर सम्बोधित करता है। तपस्वी एवं शान्त जन 'साधो' शब्द से सम्बोधित लिये जाते हैं। युवराज को 'स्वामिन्' और राजकुमार को 'भर्तृदारक' सम्बोधन दिया जाता है। अधम को सौम्य और भद्रमुख शब्दों से भी सम्बोधन किया जाता है। पिता अपने पुत्र को तथा गुरु अपने शिष्य को वत्स, पुत्र, तात अथवा गोत्र नाम से सम्बोधित करे। निष्कर्षतः भरत कहते हैं कि नाटक आदि में नाट्यप्रयोक्ताओं के द्वारा जिसका जो कर्म, शिल्प, विद्या, जाति हो उसे उसी के अनुरूप नाम से पुकारना चाहिये।

भरत ने और उनकी परम्परा की अनुपालना करते हुये धनञ्जय, विश्वनाथ, शारदातनय आदि आचार्यों ने लोकौचित्य को ध्यान में रखते हुये सम्बोधन का विधान निश्चित किया है। कालिदास ने भी अपने रूपकों में उक्त नाट्यशास्त्रीय नियमों की अनुपालना की है।

छ: अंग

पाठ्य-

वाचिक अभिनय का सर्वाधिक प्रमुख भाग है- पाठ्य। वाचिक अभिनय का प्रस्तुतीकरण इसी के माध्यम से होता है। इसलिये इसका सीधा सम्बन्ध प्रयोग विज्ञान से है। भरत ने इसे वाचिक अभिनय का प्राण माना है। पाठ्य हैं- स्वर, स्थान, वर्ण, काकु, अलंकार, और अंग। पाठ्य के इन सभी भेदों का समुचित प्रयोग तभी सम्भव है जब कवि और अभिनेता व्याकरणशास्त्र, काव्यशास्त्र, संगीतशास्त्र और छन्दःशास्त्र की सम्यक् जानकारी रखता हो। पाठ्य के अन्तर्गत अधोलिखित तत्त्वों की चर्चा की गई है।

" स्वरविधान- षडज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद ये स्वर हैं। हास्य तथा शृंगार में मध्यम तथा पंचम स्वरों का प्रयोग किया जाना चाहिये। वीर, रौद्र तथा अद्भुत में षडज तथा ऋषभ का, करुण रस में गान्धार और निषाद स्वरों का, बीभत्स तथा भयानक रसों में धैवत स्वरों का प्रयोग अपेक्षित माना गया है।

ii) स्थानविधान- ध्वनि निकलने के तीन स्थान हैं- उरस्, कण्ठ, तथा मूर्धा (सिर)। दूर के व्यक्तियों को सम्बोधित करने के लिये शिरःस्थान, निकटस्थ व्यक्ति को सम्बोधन करने के लिये कण्ठ स्थान तथा बिल्कुल समीप के व्यक्ति से बात चीत करने के लिये उरस् स्थान से ध्वनि निकालनी चाहिये।।

iii) वर्णविधान- बलाघात और स्वर-लय की स्थिति के अनुरूप चार प्रकार के वर्ण हैं। उदात्त, अनुदात्त स्वरित तथा कम्पित। हास्य तथा शृंगार रस में स्वरित तथा उदात्त, वीर-रौद्र तथा अद्भुत में उदात्त और कम्पित; करुण, वीभत्स और भयानक में स्वरित तथा कम्पित वर्णों का प्रयोग अभिनय को प्रभावी बनाता है। उदात्त और अनुदात्त उच्चारण में बलाघात और स्वरित और कम्पित उच्चारण में स्वर-लय का प्रयोग माना जाता है।

iv) काकु विधान- कण्ठ की ध्वनि में बलाघात आदि के द्वारा विशेष अर्थ की व्यञ्जना कराना काकु कहलाता है। इसके दो प्रकार माने गये हैं- (१) साकांक्ष (२) निराकांक्ष।

साकांक्ष- जिस वाक्य में अर्थ की व्यंजना पूर्णतः व्यक्त न हो और वाक्य- श्रवण के पश्चात् भी अतिरिक्त अर्थ की आशा बनी रहे उसे साकांक्ष काकु कहते हैं। यथा-

यद्रामेण कृतं तदेव कुरुते द्रोणात्मजःक्रोधनः।

(वेणीसंहार, ३/३३)

यहाँ काकु के बल से विदित हो जाता है जो कार्य राम (परशुराम) ने किया वही (शत्रुविनाश) कार्य क्रोधी द्रोणपुत्र अश्वत्थामा करता है। यहाँ उदात्त और कम्पित वर्षों की उच्च और दीप्त अलंकारों की परिसमाप्ति नहीं है। अतः राम से भी अधिक द्रोणपुत्र करता है यह अर्थ साकांक्ष काकु के बल से विदित होता है।

स्वस्था भवन्तु मयि जीवति धार्तराष्ट्राः।

(वेणीसंहार, १/८)

यहाँ भी साकांक्ष काकु है। इसे कौरवों के स्वास्थ्य निषेधरूप विषय की आकांक्षा है। हला,सखि वयस्ये पदों का प्रयोग करती हुई एक दूसरे को सम्बोधन देती हैं। हीनपात्र सपरिवार उत्तम पुरुष को अपना नाम लेकर सम्बोधित करते हैं। शिल्पी तथा उनकी स्त्रियाँ उनके कार्यों के अनुसार सम्बोधित किये जाने चाहिये। अधम पुरुष या सेवक वर्ग 'हहो', 'हण्डे' पदों से सम्बोधित किये जाते हैं। परिजन राजा को 'भट्ट' और रानी को 'भट्टिनी' कहते हैं। सूत रथी को 'आयुष्मान्' कहकर सम्बोधित करता है। तपस्वी एवं शान्त जन 'साधो' शब्द से सम्बोधित लिये जाते हैं। युवराज को 'स्वामिन्' और राजकुमार को 'भर्तृदारक' सम्बोधन दिया जाता है। अधम को सौम्य और भद्रमुख शब्दों से भी सम्बोधन किया जाता है। पिता अपने पुत्र को तथा गुरु अपने शिष्य को वत्स, पुत्र, तात अथवा गोत्र नाम से सम्बोधित करे। निष्कर्षतः भरत कहते हैं कि नाटक आदि में नाट्यप्रयोक्ताओं के द्वारा जिसका जो कर्म, शिल्प, विद्या, जाति हो उसे उसी के अनुरूप नाम से पुकारना चाहिये।

भरत ने और उनकी परम्परा की अनुपालना करते हुये धनञ्जय, विश्वनाथ, शारदातनय आदि आचार्यों ने लोकौचित्य को ध्यान में रखते हुये सम्बोधन का विधान निश्चित किया है। कालिदास ने भी अपने रूपकों में उक्त नाट्यशास्त्रीय नियमों की अनुपालना की है।

छः अंग

पाठ्य-

वाचिक अभिनय का सर्वाधिक प्रमुख भाग है- पाठ्य। वाचिक अभिनय का प्रस्तुतीकरण इसी के माध्यम से होता है। इसलिये इसका सीधा सम्बन्ध प्रयोग विज्ञान से है। भरत ने इसे वाचिक अभिनय का प्राण माना है। पाठ्य हैं- स्वर, स्थान, वर्ण, काकु, अलंकार, और अंग। पाठ्य के इन सभी भेदों का समुचित प्रयोग तभी सम्भव है जब कवि और अभिनेता व्याकरणशास्त्र, काव्यशास्त्र, संगीतशास्त्र और छन्दःशास्त्र की सम्यक् जानकारी रखता हो। पाठ्य के अन्तर्गत अधोलिखित तत्त्वों की चर्चा की गई है। " स्वरविधान- षडज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद ये स्वर हैं। हास्य तथा शृंगार में मध्यम तथा पंचम स्वरों का प्रयोग किया जाना चाहिये। वीर, रौद्र तथा अद्भुत में षडज तथा ऋषभ का, करुण रस में गान्धार और निषाद स्वरों का, बीभत्स तथा भयानक रसों में धैवत स्वरों का प्रयोग अपेक्षित माना गया है। साकांक्ष काकु का उच्चारण स्थान उरस् तथा कण्ठ है। यह (उच्च) तार स्वर से शुरू होकर मन्द्र पर समाप्त होता है तथा वर्ण और अलंकार में पूर्ण नहीं होता।

निराकांक्ष- जिस वाक्य में व्यंजित अर्थ की पूर्णता हो तथा अतिरिक्त अर्थ शेष न रहे उसे निराकांक्ष काकु कहते हैं। जैसे-

ममामि कौरवशतं समरे न कोपात् दुश्शासनस्य रुधिरं न पिबाम्युरस्तः।

संचूर्णयामि गदया न सुयोधनोरू सन्धिं करोतु भवता नृपतिः पणेन।।

(वेणीसंहार, १/१५)

निराकांक्ष काकु का उच्चारण स्थान सिर (मूर्धा) होता है। यह मन्द्र स्वर से शुरू होकर तारस्वर में समाप्त होता है। इसमें वर्ण तथा अलंकार पूर्ण होते हैं।

v) अलंकार।- पाठ्य से सम्बन्धित पांचवां अंग अलंकार है। अलंकार स्वर सामजस्य को कहते हैं। ये छैः प्रकार के हैं-

उच्च अलंकार- यह स्वरतान सिर स्थान से तारस्वर के निवेश से निकलता है, इसका प्रयोग दूर के व्यक्ति से बात करने, विस्मय की अभिव्यक्ति, धीरे-धीरे दूर जाता हुआ सम्भाषण, दूर से पुकारने तथा त्रास भाव जाग्रत करने में किया जाता है।

दीप्त अलंकार- इस स्वरतान की अभिव्यक्ति सिर स्थान से तार स्वर के प्रयोग से होती है। आक्षेप, कलह, विवाद, अमर्ष, आरोप-प्रत्यारोप, अधर्षण (असहिष्णुता) क्रोध, शौर्य, दर्प, तीक्ष्ण, रूक्ष भाषण, भर्त्सना आदि में इसका प्रयोग किया जाता है।

मन्द्र अलंकार- यह उरस् स्थान से प्रकट किया जाता है और इसका प्रयोग निर्वेद, ग्लानि, शंका, चिन्ता, उत्सुकता, दैन्य, आवेग, व्याधि, पीड़ा, मूर्छा तथा मद की स्थिति में होता है। प्रथमभाग

नीच अलंकार- इस स्वरतान को उरस् से निकाला जाता है। इसका स्वर

मन्द्र-तार होता है। स्वाभाविकभाषण, बीमारी थकावट, दूर चलना, त्रास तथा मूर्छा आदि की स्थितियों में नीच अलंकार का प्रयोग मान्य है।

दुत अलंकार- यह कण्ठभाग से प्रकट किया जाता है। यह त्वरित स्वर है। लज्जा, प्रेम प्रदर्शन, प्रेमनिवेदन का तिरस्कार, भय, शीत, स्वर, आर्त, त्रास तथा वेदना आदि में दुत अलंकार का प्रयोग किया जाता है।

विलम्बित अलंकार - यह कण्ठ स्थान से निकाला गया मन्द्रस्वर है। इसका प्रयोग शृंगार, वितर्क, अमर्ष, असूया, अव्यक्तकथन, लज्जा, चिन्ता, विस्मय, तर्जन, दोष कथन दीर्घ रोग की स्थिति तथा पीड़ा अनुभव करने की अवस्था में से होता है।

उच्च, दीप्त, द्रुत, काकु अलंकारों से चेतावनी, सम्भ्रम, कठोर आक्षेप, तीक्ष्ण तथा कठोर भाव का अभिनय, आवेगक्रन्दन, परोक्ष को चुनौती देना, तर्जन, त्रासन, दूर स्थित व्यक्ति से संभाषण तथा भर्त्सना आदि की अभिव्यक्ति के लिये किया जाता है। मन्द्र, द्रुत तथा काकु अलंकारों का प्रयोग बच्चों का लालन, प्रेम अस्वीकरण, भय तथा शीत से आक्रान्त अवस्थाओं में किया जाता है। बीमारी, ज्वर, भूख-प्यास, नियम पालन, वितर्क, गहरा घाव, रहस्यकथन, चिन्ता तथा व्रत पालन में मन्द्र, नीच तथा काकु स्वर-तान का प्रयोग किया जाता है। देखे जाने के बाद किसी वस्तु की हानि, इष्ट वस्तु या व्यक्ति के विषय में अनिष्ट सुनना, इच्छित वस्तु का आख्यान, मानसिक चिन्ता, उन्माद, असूया, उपालम्भ जो पूर्णतः व्यक्त नहीं हो सकता उसका कथन, विस्मय, अमर्ष, हर्ष, विलाप आदि स्थितियों में काकु, दीप्त, मन्द्र तथा विलम्बित होता है। विभिन्न रसों के अनुसार काकु के स्वर ताल-लय में परिवर्तन किया जाता है। हास्य शृंगार तथा करुण में विलम्बित; वीर, रौद्र तथा अद्भुत में दीप्त; भयानक और बीभत्स में द्रुत तथा नीच रखा जाता है।।

वाक्यविन्यास-

भरत मुनि ने वाचिक अभिनय में पाठ्य के पूर्वोक्त रूपों के अतिरिक्त रसाभिव्यक्ति की दृष्टि से छः स्थितियाँ और गिनाई हैं। ये वाक्य के छैः अंग- विच्छेद, अर्पण, विसर्ग, दीपन और प्रशमन। नाटकीय सम्भाषण विधि में इनका प्रयोग परिस्थितियों के अनुसार अलग-अलग प्रकार से किया जाता है।

विच्छेद- अर्थ की स्थिति को स्पष्ट करने के लिये वाक्य में विराम से विच्छेद होता है। इसका सम्बन्ध वाक्य में अर्थ की सम्पूर्णता पर निर्भर है। छन्द रचना से इसका सम्बन्ध नहीं। एक, दो या तीन अक्षरों के बाद भी विराम हो सकता है। विच्छेद से अर्थ ग्रहण में सहायता मिलती है। वीर, रौद्र और अद्भुत रसों में इसका विशेष विन्यास किया जाना चाहिये।

अर्पण- रंग-स्थल को सुन्दर और मधुर ध्वनियों से अनुगुंजित करने वाला पाठ हास्य और शृंगार रसों में विशेष प्रभावी लगता है।

विसर्ग- वाक्य को समाप्त करना।

अनुबन्ध- शब्दों के प्रयोग में निरन्तरता।

दीपन- तीनों स्वरस्थानों- उर, कण्ठ तथा शिर से क्रमशः वृद्धि को प्राप्त स्वर करुण रस की व्यंजना में सहायता करता है।

प्रशमन- बिना वैस्वर्य के तारस्वरों का अवरोहण।

हास्य तथा शृंगार रस से सम्बद्ध वाक्यों में अर्पण, विच्छेद, दीपन तथा प्रशमन से युक्त पाठ्य उपयुक्त माना गया है। करुण में दीपन तथा प्रशमन का; वीर, रौद्र तथा अद्भुत में विच्छेद, प्रशमन, दीपन व अनुबन्ध का और बीभत्स-भयानक में विसर्ग और विच्छेद का प्रयोग किया जाता है।

लयविधान- इन सबका प्रयोग शिर, कण्ठ आदि स्थानों से निकले तार, मन्द्र तथा मध्य स्वरों पर आधारित होता है। इसे लय कहते हैं। लय तीन प्रकार का है-

द्रुत, मध्य और विलम्बित। दूरस्थ व्यक्ति से बातचीत करने में शिर स्थान से निकले तार स्वर-लय का, निकट के व्यक्ति से बातचीत करने में उर से निकले मन्द्रलय का और बगल में स्थित व्यक्ति से बातचीत करने में उर से निकले मन्द्र स्वर-लय का प्रयोग किया जाना चाहिये। तार से मन्द्र और मन्द्र से तार लय पर जाना उचित नहीं। शृंगार- हास्य में मध्य, करुण में विलम्बित; वीर, रौद्र, अद्भुत, बीभत्स तथा भयानक में द्रुत लयों का प्रयोग मान्य है।

नाट्यशास्त्र, अग्निपुराण आदि में रस-भाव से सम्बन्धित वाचिकाभिनय पर विचार करते हुये उसके अधोलिखित बारह प्रभेद भी गिनाये हैं- आलाप, प्रलाप, विलाप, अनुलाप, संल्लाप, अपलाप, सन्देश, अतिदेश, निर्देश, उपदेश, अपदेश तथा व्यपदेश।

i. आलाप- किसी से बात करना या सम्भाषण करना। (भाषणमालापः)-

ii. प्रलाप- असम्बद्ध या निरर्थक वाक्यों का प्रयोग। (प्रलापो वचनं बहु)

iii. विलाप- शोक की अवस्था में दुःख से उत्पन्न वचन-विन्यास (विलापो दुःखवचनम्)

iv. अनुलाप- एक ही बात को बार-बार दोहराना। (अनुलापोऽसकृद्वचः)

v. संलाप- उक्ति-प्रत्युक्ति से युक्त सम्भाषण। (संलाप उक्तप्रत्युक्तम्)

vi. अपलाप- पूर्वकथित शब्दावली की भिन्नार्थ में योजना। (अपलापोऽन्यथा वचः)

vii. सन्देश- 'उससे यह बात कह देना' इस निर्देश के साथ दिये गये संदेशात्मक संवाद की योजना। (वार्ता प्रमाणं सन्देशः)viii. अतिदेशा- जैसा तुमने कहा था वैसा ही मैं कहता हूँ इस वाक्य योजना के साथ सहमति सूचक वचन विन्यास। (तन्वदेशोऽतिदेशः)

ix. निर्देश- 'मैं यह कहता हूँ इस प्रकार की निर्देशात्मक शब्दयोजना (निर्देशः प्रतिपादनम्)

x. उपदेश- वाणी द्वारा किसी को शिक्षा देना। (उपदेशश्च शिक्षावाक्)

xi. व्यपदेश- बहाने से कही जाने वाली शब्दावली। (व्याजोक्तिः व्यपदेशकः)

xii. अपदेश- दूसरे के वचनों को बताते हुये अपनी बात कहना। (अपदेशोऽन्यवर्णनम्) उपर्युक्त बारह प्रकार के वचन-विन्यासों

के पुनः सात रूप और माने गये हैं- प्रत्यक्ष, परोक्ष, भूत, भविष्य, वर्तमान, आत्मस्थ तथा परस्थ।।

१.२.२.१ अभिज्ञानशाकुन्तल में वाचिक अभिनय के कतिपय प्रयोग-

अभिज्ञानशाकुन्तल के प्रथम अंक में दुष्यन्त शकुन्तलादि के आलाप को सुनकर ही लताकुञ्ज की ओर आकृष्ट होता है। इसी प्रकार दूसरे अंक में सेनापति मृगया के प्रति खिन्न और विरक्त विदूषक के वचनों को उसका प्रलाप कह कर उपेक्षित करना चाहता है।

अभिनय कला में विशेष दक्षता प्राप्त करने के लिये प्रशिक्षुओं को इन विधि-विधानों का ज्ञान और अभ्यास कराना आवश्यक है। भरत ने रस और भावों को ध्यान में रखते हुये वाचिकाभिनय का दिशा-निर्देश मात्र किया है। मंचन के समय किन तत्त्वों का प्रयोग उपयुक्त है, इसका निश्चय नाट्य की परिस्थितियों को देखकर ही किया जाता है। नाट्याचार्य (सूत्रधार) की कुशलता पर निर्भर करता है कि नाट्यप्रयोग की सफलता के लिये कुशल अभिनेताओं के द्वारा परिस्थितियों के अनुकूल विविधतापूर्ण वाचिकाभिनय कराये जिससे कवि के मर्म को अधिगत कर प्रेक्षक रसानुभूति में सक्षम हो सके। इस प्रकार वाचिक अभिनय के लिये दिशा-निर्देश देते समय भरत की दृष्टि रंगमंच और काव्य दोनों पर ही केन्द्रित रही है।

अभिज्ञानशाकुन्तल न केवल कालिदास का प्रत्युत संस्कृत साहित्य का सर्वोत्कृष्ट नाटक है। रस, भाव, भाषा, अभिनय के सम्बन्ध में उन्होने पूर्णतः भरत की परम्परा का पोषण किया है। कथानक की भाषा और संवादों की ध्वन्यात्मकता सहृदयों को प्रभावित करती है। छन्द, अलंकार, गुण, नाट्यभूषण, सम्बोधन विधि, प्राकृतभाषा का प्रयोग आदि न केवल भरत की परम्परा का अनुगम करते हैं प्रत्युत कथावस्तु की आवश्यकता को ध्यान में रखकर विन्यस्त हैं। उपमा, अर्थान्तरन्यास कवि के सर्वाधिक प्रिय अलंकार हैं। प्रस्तुतप्रशंसा का अंकन भी बहुत ही प्रभावी हुआ है। ( रस और भाव के अनुरूप सम्बोधन प्रयोग में भी कालिदास की नाट्यशास्त्रीय विशेषज्ञता प्रमाणित है। दुष्यन्त, सूत, कण्व, मारीच ऋषि, शाङ्गुरव, शारद्वत आदि उत्तम श्रेणी के पात्रों की भाषा संस्कृत है। शकुन्तला, प्रियंवदा, अनसूया और तापसियों से शौरसेनी में सम्भाषण कराया गया है। चेट-चेटी अर्धमागधी प्राकृत में सम्भाषण करते हैं।

सम्बोधन- सूत्रधार और नटी परस्पर 'आर्य' और 'आर्य' कहकर परस्पर सम्बोधन करते हैं। सूत राजा को 'आयुष्मन्' (पृ. १५, १७.१८, २३, २४) कहता है, राजा उसे 'सूत' ही कहता है (पृ.१६,१९); वैखानस राजा को 'राजन्' सम्बोधन करते हैं (पृ. २१)। शकुन्तला और सखियाँ परस्पर नाम के साथ, 'हला' याव'सखि' शब्द लगा कर (पृ. २६, २८, ३०, ३१, ३९, ४०, ४९) सम्बोधन करती हैं या परस्पर नाम (पृ. ३८, ४६) लेकर पुकारती हैं। राजा आरम्भ में उनके प्रति 'भवति', 'अत्रभवति' (पृ. ३७) शब्दों से अपना सम्मान प्रकट करता है। तत्पश्चात् 'भद्रे' (पृ. ४७, १०४, १०५) कहकर अपना आदरभाव प्रकट करता है। प्रियंवदा और अनसूया दुष्यन्त को 'आर्य' (पृ. ४५) कहती हैं। विश्वास बढ़ जाने पर शकुन्तला के सम्बन्ध से अनसूया राजा को 'वयस्य' भी कहती है। (पृ. १०५) विदूषक राजा को 'वयस्य, कहता है। (पृ. ५९, ६०, ७०) राजा भी इसे 'वयस्य', (पृ. ७१, ८३), 'सखे' (पृ. ७०, ७६, ८२) या नामतः (पृ. ६०, ८०) सम्बोधित करता है। बात समझ न पाने की स्थिति में उसे परिहास में 'मूर्ख' (पृ.७६) भी कहा है। दौवारिक राजा को भर्ता (पृ. ६७, ७२) व राजा इसे नामतः (पृ. ६२, ६८, ८०) सम्बोधित करता है। सेनापति राजा को स्वामिन् कहता है (पृ. ६५, ६८) राजा इसे भद्र उपपद पूर्वक सेनापते (पृ. ६४) सम्बोधन करता है। ऋषिकुमार परस्पर नाम लेते हैं (पृ. ७८) और राजा को राजन् (पृ. ७९) कहते हैं। सेनापति विदूषक को सखे (पृ. ६४) कहता है। अनुराग, पश्चात्ताप आदि भावों की अवस्था में भावाभिव्यंजक सम्बोधन भी दिये गये हैं। जैसे राजा एकान्तिक प्रेम प्रकट करते समय शकुन्तला को 'करभोरु, सुन्दरि, भीरु' (पृ. १०७, १११) कहता है। शिष्टाचार का उल्लंघन करता देखबशकुन्तला दुष्यन्त को 'पौरव' (पृ. १०८, १११) सम्बोधन देकर वंशानुकूल शिष्टाचार का स्मरण कराना चाहती है। शकुन्तला गौतमी को 'आर्ये' (पृ. १११) कहती है। गौतमी और अन्य तापसियाँ शकुन्तला को वात्सल्य व्यंजक 'जाते' और 'वत्से' (पृ. ११२, १२८, १३३, १३६) कहती हैं। इनके द्वारा आश्रम कुमारों को भी 'वत्स' या नामतः सम्बोधन किया जाता है (पृ. १३०) कण्व भी शकुन्तला को 'वत्से'। (पृ. १३३, १३९) कहते हैं। अनसूया (पृ. १३९) को नामतः भी सम्बोधन किया गया है। (पृ. १३३) शकुन्तला आदि सखियाँ उन्हें 'तात' (पृ. १३७, १३९, १४८) सम्बोधन करती हैं। शिष्यगण कण्व को 'भगवन्' सम्बोधन देते हैं (पृ. १३४, १४१)। आश्रमकुमारों को कण्व के द्वारा 'वत्स' या नामतः (पृ. १४३) सम्बोधन किया जाता है। कंचुकी (पृ. १५६), वैतालिक (पृ. १५७) और प्रतिहारी (पृ. १५९, १६३) राजा को 'देव' कहते हैं। शाङ्गुरव आदि राजा को 'राजन्' (पृ.

१६४) और पुरोहित को 'महाब्राह्मण' (पृ. १६२) कहकर सम्बोधित करते हैं। शकुन्तला उसे 'आर्यपुत्र', 'आर्य' (पृ. १६४, १७०) सम्बोधन देती है। राजा के द्वारा इन सबके लिये एक सम्बोधन 'तपोधनाः' भी किया गया है (पृ. १६२), शाङ्गुरव और शारद्वत परस्पर नाम लेते हैं। पुरोहित राजा को 'देव' (पृ. १८०) कहता है। शकुन्तला क्रोध में दुष्यन्त को 'अनार्य' (पृ. १७५) कहती है। दुष्यन्त द्वारा शाङ्गवादि को दिया गया सम्बोधन 'भो सत्यवादिन्' (पृ. १७७) कटाक्षपूर्ण एवं उपहासात्मक है। 'तापसवृद्ध' (पृ. १७४) भद्रे (पृ. १७५), 'भो तपस्विन्' (पृ. १७८) सम्बोधन शिष्टाचार व आदर के व्यंजक हैं। इस प्रकार कालिदास ने सम्बोधन के लिये नाट्यशास्त्रीय नियमों की अनुपालना करते हुये भावौचित्य और लोकौचित्य का ध्यान रखा है।